



दलित चेतना की अवधारणा (The Concept of Dalit Consciousness)

Dr. Suchita Kujur
Assistant Professor
Department of Hindi
Seth Soorajmull Jalan Girls' College,
Kolkata , West Bengal, India

Abstract

This paper critically examines the concept of Dalit consciousness, which refers to the critical awareness and collective self-identity that developed among Dalit communities in response to centuries of caste-based oppression and social exclusion in India. Dalit consciousness is more than an understanding of historical marginalization; it is a political, cultural, and moral assertion of dignity, equality, and human worth. The concept was significantly shaped by reformers and leaders such as Jyotirao Phule, Savitribai Phule, and B.R. Ambedkar. They challenged the legitimacy of the caste hierarchy and rejected the notion of ritual pollution and inherited inferiority. Ambedkar, in particular, framed Dalit consciousness as a rejection of the Hindu social order that denied basic rights, advocating education, conversion, and constitutional safeguards as tools for emancipation. Dalit consciousness operates on two levels: it critically exposes the structural violence, economic deprivation, and cultural stigmatization embedded in the caste system, and next, it constructively promotes solidarity among Dalit groups, revives suppressed histories, and cultivates cultural pride through literature, art, and political mobilization. At its core, Dalit consciousness represents a shift from passive acceptance of status to active resistance and self-determination. It seeks not merely inclusion within the existing order, but the transformation of that order toward an egalitarian society based on liberty, fraternity, and social justice.



Received: 30.04.2026

Accepted: 11.06.2026

Published: 15.06.2026

CJHSSC, Volume: 2

Issue: 1, June 2026

Page: 177 - 187

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.20722543>

Corresponding Author: suchita79kujur@gmail.com

Copyright: Author © 2026



This work is licensed under a [Creative Commons Attribution-NonCommercial-NoDerivatives 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/).

Published by: Seth Soorajmull Jalan Girls' College,
Kolkata, West Bengal, India.

Available at: www.ssjalangirlscollege.org.in/journal.php
Email: confluence.ssjgc@gmail.com

Keywords: Dalit consciousness, collective self-identity, B.R. Ambedkar, Jyotirao Phule, Savitribai Phule.

दलित शब्द का अर्थ

बृहद हिन्दी कोश में 'दलित' शब्द इस रूप में है- "रौंदा, कुचला, दबाया हुआ, पदाक्रांत वर्ग, हिंदुओं में वे शूद्र जिन्हें अन्य जतियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है"।¹ हिन्दी संक्षिप्त शब्दसागर में 'दलित' शब्दका अर्थ इस तरह दिया गया है- "मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, खंडित, विनष्ट किया हुआ"।² शोषित समाज चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग और धर्म में आता हो।

दलित चेतना के पुरोधा डॉ. बी. आर. अंबेडकर के शब्दों में "शूद्र भारतीय आर्य-समाज का चौथा वर्ण है। शूद्रों को चतुर्वर्णिय व्यवस्था के परिणामस्वरूप अपरिमित क्षति उठानी पड़ी है तथा यही व्यवस्था उनके पतन-पराभव का मूलकारण है और शूद्र केवल शूद्र ही उसका उच्छेद करने में सक्षम हैं"।³ बाबा साहब अपने अनुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि समाज की ऊँची जतियों से दलितों के उद्धार की आशा करना व्यर्थ है जिन्हें प्रतिपल दलित होने की अवमानना का शिकार होना पड़ता है उन्हें ही समाज में स्वयं के लिए जगह बनाना होगा और इसके लिए उन्होंने तीन मंत्र बताए शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो।

मोहनदास नैमिशराय 'दलित' शब्द को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं कि "दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का ही अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते। अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है"।⁴ दलित का अर्थ सबसे पहले अछूतों से है बाद में वंचितों से है क्योंकि पिछड़े आदिवासियों को भी हम सर्वहारा ही कहेंगे। दुर्गम पहाड़ियों और जंगलों में वास करने के कारण ये सभ्यता की दृष्टि से पिछड़े कहे जा सकते हैं, उनकी अशिक्षा का फायदा ताकतवर उठा सकते हैं, आर्थिक रूप से वे विपन्न हो सकते हैं

लेकिन आदिवासी समाज में जाति और वर्णगत भेदभाव नहीं है फलतः अछूत होने की पीड़ा उन्हें नहीं झेलनी पड़ती है। शिक्षा प्राप्त कर, अपनी स्थिति सुधार कर वे आसानी से मुख्यधारा में शामिल हो सकते हैं लेकिन अछूत जितने भी ऊंचे ओहदे में पहुँच जाए जाति का कोढ़ उनका पीछा नहीं छोड़ता। मोहनदास नैमिशराय ने अपने अनुभव के आधार पर जो उपरोक्त बात कही वह पूर्णतः सच है।

युवा आलोचक रामचन्द्र के अनुसार “दलित शब्द सिर्फ किसी विशेष जाति-उपजाति से संबद्ध न होकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति हेतु फुले-अंबेडकरवादी एवं अन्य परिवर्तनकारी विचारधारात्मक वर्गों के संघर्ष का प्रतीक है। भारत की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवस्था की संरचना में उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित और अधिकारों से वंचित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला ‘दलित’ शब्द सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा का पर्याय बन चुका है। दलित शब्द प्रतिपक्ष के शोषण और व्यवहार का बोध करता है, उस हिन्दू व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करता है जिसने उसे ऐसा बनाया है। यह शब्द याचना, निरीहता, रिरियाहट और सहानुभूति को नकारता है चेतनाशीलता का विकल्प बनता है”¹⁵ निसंदेह फुले-अंबेडकर जैसे व्यक्तित्व के बिना दलित चेतना की कल्पना नहीं की जा सकती। दलित शब्द मजबूर करता है कि समाज उसकी तरफ देखे दूसरी तरफ उनकी हालत के जिम्मेदार वर्ग की घिनौनी करतूतों का भी पर्दाफाश करता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि ‘दलित’ शब्द जब साहित्य से जुड़ता है तब उसका अर्थ ही बदल जाता है-“साहित्य के साथ दलित शब्द के जुड़ते ही उसकी व्यापकता और अधिक क्रांतिबोधक हो जाती है। अर्थ और अधिक व्यंजनात्मक होकर साहित्य की भूमिका और सामाजिक उत्तरदायित्वों को और अधिक विश्लेषित करने की क्षमता हासिल कर लेता है दलित शब्द विरोध की अभिव्यक्ति का प्रतीक बन जाता है। मानवीय सरोकारों से जुड़ कर सामाजिक प्रतिबद्धता स्थापित करता है”¹⁶

अर्थात् जब साहित्य के साथ दलित शब्द जुड़ जाता है तब उसका कार्यक्षेत्र विस्तृत हो जाता है। साहित्य से जुड़कर दलित शब्द दलित विमर्श की जमीन तैयार करता है।

दलित साहित्य ने दलितों को अपनी आपबीती कहने का अवसर प्रदान किया है दलित साहित्य दलित जीवन का ऐसा दस्तावेज़ है जो दलित जीवन की पीड़ाओं को, दलितों के संघर्षों को हमारे सामने लाती है तब दलित जीवन की समस्याएँ विमर्श के केंद्र में आती हैं और यहीं से यह बहस भी शुरू हो जाती है कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है? क्या दलित साहित्य लिखने के लिए दलित होना जरूरी है या नहीं? इन बहसों के साथ दलित मसला गहराता जाता है।

दलित चेतना की अवधारणा

दलित चेतना का संबंध दलितों की जागरूकता से है। मनुष्य की चेतना परिस्थिति से निर्मित होती है “किसी भी समाज में विकास बिना प्रतिरोध के संभव नहीं है। स्थापित मूल्य, समर्थित व्यवस्था अपने को कायम रखने का हर संभव प्रयत्न करती है और नवचेतन सम्पन्न वर्ग इन स्थापित मूल्य व्यवस्था का प्रतिरोध करता है। प्रतिरोधी चेतना दूसरे जगत से अवतरित नहीं होती बल्कि हमेशा से ही स्थापित मूल्य व्यवस्था के भीतर ही प्रतिरोध करने वाला वर्ग विद्यमान रहता है”¹⁷ अर्थात् हमारी परिस्थितियाँ ही हमारे भीतर चेतना का बीज बोती हैं। स्थापित मूल्य, रूढ़ियाँ, और मान्यताओं तथा प्रतिरोधी चेतना दोनों एक दूसरे की विरोधी है और दोनों में संघर्ष तब तक चलता रहता है जब तक कि प्रतिरोधी चेतना स्वयं को न स्थापित कर दे। प्रस्तुत लेख में मैंने निम्नलिखित प्रसिद्ध साहित्यकारों की तत्संबंधी उक्तियों का विश्लेषण करते हुए दलित चेतना की समझ को विस्तार देने का प्रयास किया है।

मराठी दलित साहित्य के जाने-माने साहित्यकार शरण कुमार लिम्बाले ने दलित चेतना की व्याख्या इस तरह से की है-- “दलित साहित्य में दलित चेतना, संघर्ष से नाता रखने वाली क्रांतिकारी मानसिकता है। मनुष्य को केंद्र मानकर जाति व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने वाली प्रतीति है। दलित चेतना गुलाम को गुलामी से अवगत करा देती है। दलित चेतना दलित साहित्य

का महत्वपूर्ण जनज-बीज है”¹⁸ अर्थात दलित चेतना ही दलित साहित्य के जन्म का कारण है। दलित आलोचक रामचन्द्र के अनुसार “दलित चेतना का संबंध दलित दृष्टि और विचारधारा से है, वर्ण-व्यवस्था और किसी भी प्रकार के शोषण एवं अन्याय के अंत से है, हिन्दू व्यवस्था की असमानता और हिंसा के प्रति विद्रोह से है और समतापरक व्यवस्था की निर्मिति से है”¹⁹ दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति देता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। पारंपरिक सोच के प्रति एक नकार है। एक विद्रोह है। यह विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है जिनकी वजह से आज वे दलित हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में “दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि ‘मैं कौन हूँ? मेरी क्या पहचान है? इसी सवाल से दलित लेखक की रचनाशीलता को ऊर्जा मिलती है दलित की व्यथा, दुख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है, या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु-विगलित वर्णन, जो मौलिक चेतना से विहीन हो। चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती है। वह है दलित चेतना”¹⁰ अपने विचार को विस्तार देते हुए वे कहते हैं “भारतीय समाज व्यवस्था को समझे बगैर दलित चेतना की तीव्रता का अहसास कठिन है। दलित साहित्य के सरोकारों में दलित चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका है। आत्म-विक्षेपण, अस्मिता की तलाश, जीवन-मूल्यों की खोज, मानवीय सरोकारों की पड़ताल आदि-आदि दलित संस्कृति के मूल आधार हैं। इन सवालों से ही दलित चेतना का उद्गम है और डॉ. अंबेडकर के जीवन दर्शन, सामाजिक संघर्ष से ऊर्जा पाकर साहित्यिक अभिव्यक्ति में परिवर्तित हुआ है”¹¹ दलित चेतना का सीधा संबंध अंबेडकर दर्शन से है वही प्रेरणाश्रोत भी है। सामाजिक उत्पीड़न, सामंती सोच, वर्ण-व्यवस्था से उपजी उंच-नीच ने दलितों को युगों से मानसिक गुलामी में जकड़ कर रखा हुआ है। उसकी मुक्ति के तमाम रास्ते बंद थे, इस गुलामी से मुक्त होने का विचार ही दलित चेतना है जिसे ज्योतिबा फुले और अंबेडकर ने दार्शनिक आधार दिया जिसका केंद्रबिन्दु यही शोषित जन है।

डॉ. गंगाधर पनतावणे भी इसी तथ्य पर ज़ोर देते हैं कि “दलित साहित्य की प्रेरणा न मार्क्सवाद है, न हिंदुवाद, न नीग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल अंबेडकरवाद है”।¹² निस्संदेह दलित चेतना का संबंध अंबेडकरवादी विचारधारा से है।

बाबुराव बगुल की धारणा है कि “दलित चेतना साहित्य और आम आदमी के सम्बन्धों को व्यापकता देती है। दलित साहित्य इंसान को केन्द्र बनाता है। इंसान को महानता प्रदान करता है। इंसान प्रकृति का एक नन्हा सा रूप है। प्रकृति हमेशा गतिशील और सृजनशील होनी चाहिए स्वतन्त्रता, समता और बंधुत्व की मूल भावना दलित साहित्य की मूल गर्भ चेतना है। दलित साहित्य की अनुभूति परंपरागत साहित्य से बिल्कुल अलग है क्योंकि दलित चेतना मनुष्यों की मुक्ति की बात करती है”।¹³ जिन प्रतिकूल परिस्थितियों ने दलित जीवन की गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न किए दलित चेतना ने उनका प्रतिरोध किया।

गुजरती दलित कवि जयंत परमार दलित चेतना के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि “अंबेडकर दर्शन ने दलित कवियों के मन में आत्मसम्मान जाग्रत किया है, उसके फलस्वरूप जीवनानुभाव को देखने और पहचानने की उनकी भूमिका विद्रोह तथा नकार से भर उठी है। उसकी आवेग किसी तूफान की तरह है। उसका सौन्दर्य और उसका सामर्थ्य उसकी वेदना में है”।¹⁴ जब बाबा अम्बेडकर जैसा व्यक्तित्व दलितों के पक्ष में खड़ा हुआ और विवेकपूर्ण ढंग से दलितों के हक की लड़ाई उन्होंने लड़ी तब दबे-कुचले, सताये दलितों को एहसास हुआ कि सामाजिक भेदभाव के खिलाफ उन्हें भी अपनी आवाज ऊंची करनी चाहिए।

वरिष्ठ आलोचक शंभुनाथ दलित चेतना से संबन्धित विचार रखते हुए कहते हैं-“दलित चेतना और दलित विमर्श को एक नहीं समझना चाहिए। दलित चेतना का एक मोड़ है दलित विमर्श। यह महत्वपूर्ण होते हुए भी दलित चेतना की आखिरी मंजिल नहीं है। आज के समाज में कोई दलित अपनी दलित अस्मिता तक सीमित नहीं है। उसकी पहचान एक किसान, व्यवसायी, कम्प्युटर इंजीनियर आदि विभिन्न रूपों में है। वह वैश्वीकरण के दौर में अपनी नयी पहचान गढ़ रहा

है। वह भारतीय समाज और विश्व की समस्याओं से बचकर एक ही खोल में हर वक्त नहीं रह सकता। कोई भी मनुष्य इकहरी अस्मिता में खुलकर सांस नहीं ले सकता। दलितों की राजनीतिक और आर्थिक सफलताओं का व्यापक असर उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा पर पड़ा है। यदि उनके पास सत्ता हो तो ब्राह्मण भी उनके चरण छूते हैं दलितों को अहसास हुआ है कि दमनकारी सत्ता केवल तभी पिघलती है जब उसके सामने एक सत्ता खड़ी हो जाती है। दलितों को इस अति-सामुदायिक अनुभव तक पहुँचाने में वर्चस्वादी मनुवादी संस्कृति की जड़ता का बहुत बड़ा हाथ है।¹⁵ समय के साथ दलितों की परिस्थियाँ और पहचान दोनों बदलेंगी। वह केवल 'दलित' की पहचान तक सीमित नहीं रहेगा। आज जिस उद्देश्य से वह लड़ रहा है, आगामी दिनों में 'वर्तमान मुद्दे' के अतिरिक्त और कई मुद्दे उनके संघर्ष में शामिल हो जाएंगे।

आगे वे कहते हैं कि दलित आत्मकथाओं द्वारा सबसे पहले दलितों ने अपनी चेतना का परिचय दिया है। साथ ही भारत की सामाजिक विषमता को मिटाने की पहल भी की। इस आत्मकथा को हमारे सामने लाने वाले साहित्यकारों ने भूख, अवमानना, भेद-भाव और शर्म की जिंदगी जी कर अपने जीवन की सच्चाई से हमारा साक्षात्कार करवाया। अपनी आपबीती कहने के लिए उन्होंने अपनी भाषा और अपने मुहावरे खुद गढ़े। इसलिए कई बार उनकी भाषा का विरोधी स्वर, तिक्तता और गाली गलौज सुनकर सभ्य समाज नाक-भौं सिकुड़ता है।

खगेन्द्र ठाकुर कहते हैं कि "दलित होने का त्रासद बोध होना, दलित होते रहने की स्थिति को अस्वीकार करना, वर्तमान राजसत्ता में समुचित भागीदारी और कुल मिलाकर दलित्व से मुक्ति दलित चेतना के तत्व हैं।"¹⁶ दलित चेतना यथास्थिति से समझौता नहीं करता। दलित होने के बोध से निरंतर मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहना दलित चेतना के लक्षण हैं।

डॉ. अभय कुमार दूबे के अनुसार -"स्वतन्त्रता, समता और बंधुता की मूल चेतना दलित साहित्य की मूल गर्भ चेतना है। दलित साहित्य की अनुभूति परंपरागत साहित्य से बिल्कुल अलग

है, क्योंकि दलित चेतना मुक्ति की बात करती है"।¹⁷ दलितों का आक्रोश अर्थहीन नहीं है समाजिक असमानता और उनके प्रति भेद-भाव के खिलाफ ही एक जंग है।

हरपाल सिंह 'अरुण' के शब्दों में "दलित चेतना का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह कुंठा, घृणा और प्रतिशोध जैसी मानवीय दुर्बलताओं को चिंतन की आंच में तपाकर जागरूकता, करुणा और सहअस्तित्व में रूपांतरित कर देती है। राजनीतिक और सामाजिक इतिहास इस बात के प्रमाण हैं कि दलितों के साथ भेदपरक व्यवहार मौजूद रहा है जिसके कारण दलितों के भीतर हीनताबोध की कुंठाजनित मानसिकता जन्म ले गयी है। इससे मुक्त होने के लिए समाज को दलित चेतना के रूप में मनोवैज्ञानिक-सामाजिक उपचारात्मक आधार मिल गया है, जिसके माध्यम से समाज में सकारात्मक चिंतन विकसित होने लगा। दलित चेतना का समाज चेतना में रूपान्तरण होने लगा। यह दलित चेतना ही है जो साहित्य को विस्तृत समय तथा बृहतर समाज के साथ जोड़ती है अर्थात् सामाजिक दायित्व निर्वहन करने की प्रेरणा देकर समाज को जोड़ने का काम करती है"।¹⁸ इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि दलित चेतना हताशा या कुंठा से उत्पन्न प्रतिक्रिया है इसमें दो राय नहीं कि यह वर्णवाद की विरोधी है पर मानवता की पक्षधरता इसकी पहली शर्त है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में "वर्ण व्यवस्था का विरोध, जाति-भेद और सांप्रदायिकता का विरोध दलित चेतना की प्राथमिकताओं में है। दलित चेतना अलगाववाद की जगह समता, एकता और भाईचारे का समर्थन करती है। मानव-मुक्ति संघर्ष में यह मनुष्य की स्वतन्त्रता और सामाजिक बदलाव के लिए कटिबद्ध है। आर्थिक क्षेत्र में यह पूंजीवाद का विरोध करती है। यह अधिनायकवाद, सामंतवाद, ब्राह्मणको मानव विरोधी मानती है। वहीं भाषावाद और लिंगवाद की भी विरोधी है। दलित चेतना साहित्यिक मानदंडों में महाकाव्य की रामचंद्र शुक्लीय परिभाषा से असहमत और पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र का विरोधी है"।¹⁹

अर्थात् जीवन के हर क्षेत्र में जो मानव विरोधी स्थापित मूल्य थे उसके खिलाफ आवाज उठाकर दलितों ने अपनी चेतना का परिचय दिया। जहां सामाजिक संरचना के सत्ताधारियों का

उन्होंने विरोध किया वहीं दलित साहित्य के रूप में नए साहित्यिक मानदंड स्थापित किए। विषय के अनुकूल कथ्य और शिल्प में भी नए प्रयोग किए गए। पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र के स्थान पर नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ने की आवश्यकता पर बल देकर जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं का बहिष्कार करना दलित चेतना का ही प्रसार है।

इस तरह से दलित चेतना के केंद्र में मानव की मुक्ति निहित है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समानता की आकांक्षी है। मनुष्यता को कुचलने वाली हर उस चेष्टा के खिलाफ एक जंग है। दलित साहित्य दलित चेतना की उत्कट और सार्थक अभिव्यक्ति है।

संदर्भ-सूची

कालिका, सहाय, राजवल्लभ, श्रीवास्तव, मुकुंदी लाल, बृहद हिन्दी शब्द कोश(1992), वाराणसी,

सप्तम संस्करण, ज्ञानमंडल मुद्रणालय पृ.510

वर्मा, रामचंद्र, संपादक, संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर(1971) वाराणसी, सप्तम संस्करण, नागरी

प्रचारिणी सभा काशी, पृ.468

ठाकुर, डॉ. हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र(2010) नई दिल्ली, दूसरा संस्करण,

भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.51

ठाकुर, डॉ. हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र(2010) नई दिल्ली, दूसरा संस्करण,

भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.51

कुमार, दीपक, चौबे, देवेन्द्र, संपादक, हाशिये का वृतांत, रामचंद्र(2011) हरियाणा, प्रथम संस्करण,

आधार, पृ. 286

वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र(2009) नई दिल्ली, प्रथम, राधाकृष्ण

प्रकाशन, पृ.16

कुमार, दीपक, चौबे, देवेन्द्र, संपादक, हाशिये का वृत्तांत, सूरज बड़त्या(2011) हरियाणा, प्रथम,

आधार प्रकाशन, पृ.235

लिम्बाले, शरण कुमार, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र(2000), नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वाणी

प्रकाशन, पृ.40

कुमार, दीपक, चौबे, देवेन्द्र, संपादक, हाशिये का वृत्तांत, सूरज बड़त्या(2011) हरियाणा, प्रथम,

आधार प्रकाशन, पृ.291

वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र(2009) नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,

राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.28-29

वही, पृ.32

वही, पृ.96

वही, पृ.30-31

वही, पृ.30-31

शंभुनाथ, भारतीय अस्मिता और हिन्दी(2012)नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सामयिक प्रकाशन,

पृ.329

ठाकुर डॉ. हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र(2010) नई दिल्ली ,दूसरा संस्करण,
भारतीय ज्ञानपीठ ,पृ.57

वही, पृ.58

अरुण, हरपाल सिंह ,दलित साहित्य के आधार तत्व(2011)नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, भारतीय
पुस्तक परिषद, पृ.147

वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र(2009) नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,
राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लि., पृ.59